आठवें इमाम हज़रत अली रिज़ा(अ०)

सैय्येदुल उलमा सैय्यिद अली नक़ी नक़वी ताबा सराह

नाम व नसब

अली नाम, रिज़ा लक़ब, और अबुलहसन कुन्नियत, हज़रत इमाम मूसा कज़िम अलैहिस्सलाम वालिदे बुज़ुर्गवार थे और इसलिए आपको पूरे नाम व लक़ब के साथ याद किया जाए तो इमाम अबुलहसन अली इबने मूसर्रिज़ा अलैहिस्सलाम कहा जाएगा। बुज़ुर्ग वालिदा की कुन्नियत उम्मुल बनीन और लक़ब ताहिरा था निहायत इबादतगुज़ार बीबी थीं।

विलादत

11 ज़ीक़ादा 1148 हि0 में मदीन–ए–मुनव्वरा में विलादत हुई इसके तक़रीबन एक माह पहले 15 शव्वाल को आपके बुज़ुर्ग दादा इमाम जाफ़रे सादिक़ (अ०) की वफात हो चुकी थी। इतने अज़ीम हादस–ए–मुसीबत के बाद जल्द ही इस मुक़द्दस मौलूद के दुनिया में आ जाने से यक़ीनन तमाम घराने में एक सुकून और तसल्ली महसूस की गई।

तरबियत

आपकी परवरिश और तरबियत अपने बुज़ुर्ग वालिद हज़रत इमाम मूसा काज़िम अलैहिस्सलाम के ज़ेरे साया हुई। और इसी मुक़द्दस माहौल में बचपन और जवानी की कई मन्ज़िलें तै हुईं। और पैंतीस बरस की उम्र पूरी हुई। अगरचे आख़री कुछ साल इस मुद्दत के वह थे जब इमाम मूसा कज़िम (अ०) इराक़ में क़ैद व ज़ुल्म की सख़्तियाँ बर्दाश्त कर रहे थे मगर इससे पहले 28 या 29 साल आपको बराबर अपने बुज़ुर्ग बाप के साथ रहने का मौक़ा मिला।

जानशीनी

इमाम मूसा काज़िम (अ०) को मालूम था कि हुकूमते वक़्त आपको आज़ादी से साँस न लेने देगी। और ऐसे हालात पेश आ जाएँगे कि आपकी आख़री उम्र के हिस्से में और दुनिया को छोड़ने के मौक़े पर दोस्ताने अहलेबैत (अ०) का आपसे मिलना या बाद के रहनुमा का दरयाफ्त करना ग़ैर मुमकिन हो जाएगा। इसलिए आपने उन्हें आज़ादी के दिनों और सुकून के औक़ात में जबकि आप मदीने में थे पैरवाने अहलेबैत को अपने बाद होने वाले इमाम से पहचनवाने की ज़रूरत महसूस फरमाई। चुनानचे औलादे अली (अ०) व फातिमा (स०) में से 17 आदमी जो मुमताज़ हैसियत रखते थे जमा फरमाकर अपने बेटे हज़रत अली रिज़ा की वसायत और जानशीनी का एलान फरमा दिया। और एक वसिय्यतनामा तहरीरन भी मुकम्मल फरमाया जिस पर मदीने के मोहतरम लोगों से साठ आदमियों की गवाही लिखी गई थी। यह एहतेमाम दूसरे इमामों के यहाँ नज़र नही आता। सिर्फ इन ख़ास हालात की बिना पर जिनसे दूसरे इमाम अपनी वफात के मौक़े पर दो चार नहीं होने वाले थे।

दौरे इमामत

हज़रत इमाम रिज़ा (अ०) की पैंतीस साल

की उम्र थी जब आप के बुजुर्ग वालिद हज़रत इमाम मूसा काज़िम की वफात हुई और इमामत की ज़िम्मेदारियाँ आपकी तरफ मुन्तक़िल हुईं। यह वह वक़्त था कि जब बग़दाद में हारून रशीद तख़्ते ख़िलाफत पर था और बनी फ़ातिमा के लिए हालात बहुत ख़राब थे। इस नाख़ुशगवार माहौल में हज़रत ने ख़ामोशी के साथ शरीअते हक़्क़हू के ख़िदमात अन्जाम देना शुरु कर दिये।

इल्मी कमाल

आले मुहम्मद (स०) के इस सिलसिले में हर फर्द हज़रत अहदियत की तरफ से बुलन्द तरीन इल्म के दर्जे पर क़रार दी गई थी जिसे दोस्त और दुश्मन सबको मानना पड़ता था। यह और बात है कि किसी को इल्मी फ़ुयूज़ फैलाने का ज़माने ने कम मौक़ा दिया और किसी को ज़्यादा। चुनानचे इन हज़रात में से इमाम जाफर सादिक़ (अ०) के बाद अगर किसी को सबसे ज़्यादा मौक़ा हासिल हुआ है तो वह इमाम रिज़ा (अ०) हैं। जब आप इमामत के मन्सब पर नहीं पहुँचे थे इस वक़्त हज़रत इमाम मूसा काज़िम अलैहिस्सलाम अपने तमाम फरज़न्दों और ख़ानदान के लोगों को नसीहत फरमाते थे कि तुम्हारे भाई अली रिज़ा (अ०) आलिमे आले मुहम्मद (स०) हैं। अपने दीनी मसाएल को इनसे मालूम कर लिया करो और जो कुछ वह कहें उसे याद रखो और फिर हज़रत मूसा काज़िम (अ०) की वफात के बाद जब आप मदीने में थे और रसूल के रौज़े पर तशरीफ रखते थे तो उलमा–ए–इस्लाम मुश्किल मसाएल में आपकी तरफ रुजू करते थे। मुहम्मद इबने ईसा यक़तीनी का बयान है कि मैंने उन तहरीरी मसाएल को जो हज़रत इमाम रिज़ा से पूछे गए थे और आपने उनका जवाब लिखा था इकटठा किया तो 18 हज़ार की तादाद में थे।

ज़िन्दगी के मुख़तलिफ़ दौर

हज़रत इमाम मूसा काज़िम (अ०) के बाद दस साल हारून का दौर रहा। यक़ीनन वह इमाम रिज़ा (अ०) के वजूद को भी दुनिया में उसी तरह बर्दाश्त नहीं कर सकता था जिस तरह उसके पहले आपके बुजुर्ग वालिद का रहना उसने गवारा नहीं किया। मगर यह तो इमाम मूसा काज़िम (अ०) के साथ जो लम्बे ज़माने तक तश्द्दुद और जुल्म होता रहा और जिसके नतीजे में क़ैदख़ाने ही के अन्दर आप दुनिया से रुख़सत हो गये इससे हुकूमते वक़्त की आम बदनामी हो गई थी और या वाक़ई ज़ालिम को खुद अपनी बदसुलूकियों का एहसास और ज़मीर की तरफ से मलामत की कैफियत थी जिसकी वजह से खुल्लम–खुल्ला इमाम रिज़ा (अ०) के ख़िलाफ कोई कारवाई नहीं की गई। यहाँ तक कहा जाता है कि एक दिन यह्या इब्ने ख़ालिद बरमकी ने अपने असर व रुसूख़ को बढ़ाने के लिए यह कहा भी कि अली बिन मूसा भी अब अपने बाप के बाद इमामत के लिए उसी तरह दावेदार हैं। तो हारून ने जवाब दिया कि ''जो कुछ हमने इनके बाप के साथ किया वही क्या कम है जो अब तुम चाहते हो कि मैं इस नस्ल ही का ख़ातमा कर दूँ।''

फिर भी हारून रशीद का अहलेबैते रसूल (स०) से शदीद इख़्तेलाफ और सादात के साथ जो सुलूक अब तक रहा था उसकी बिना पर आम तौर से हुकूमत ओहदेदारों या आम अफराद भी जिन्हें हुकूमत को राज़ी रखने की ख़्वाहिश थी अहलेबैत (अ०) के साथ कोई अच्छा रवैय्या रखने पर तैयार नहीं हो सकते थे। और न इमाम के पास आज़ादी के साथ लोग इस्तेफादे के लिए आ

सकते थे। न हज़रत को सच्चे इस्लामी अहकाम की इशाअत के मौक़े मिल सकते थे।

हारून का आख़री ज़माना अपने दोनों बेटों अमीन और मामून की आपसी रिक़ाबतों से बहुत बेलुत्फी से गुज़रा। अमीन पहली बीवी से था जो ख़ानदाने शाही से मन्सूर दवानेक़ी की पोती थी। और इसलिए अरब सरदार सब उसके तरफदार थे। और मामून एक अजमी कनीज़ के पेट से था। इसलिए दरबार का अजमी तबक़ा उससे मुहब्बत रखता था। दोनों में आपस में रस्साकशी हारून के लिए मुसीबत बनी रहती थी। उसने अपने ख़याल में इसका हल हुकूमत की तक़सीम के साथ यूँ कर दिया कि राजधानी बग़दाद और उसके चारो तरफ के अरबी हिस्से जैसे शाम, मिस्र, हिजाज़, यमन वग़ैरा मुहम्मद अमीन के नाम किये गये और मश्रिक़ी मुमालिक जैसे ईरान, ख़ुरासान, तुर्किस्तान वग़ैरा मामून के लिए मुक़र्रर किये गये। मगर यह हल तो उस वक़्त कारगर हो सकता था जब दोनो फरीक़ ''जियो और जीने दो'' के उसूल पर अमल करते होते।

लेकिन जहाँ हुकूमत की हवस काम कर रही हो वहाँ अगर बनी अब्बास के हाथों बनी फातिमा के ख़िलाफ हर तरह के ज़ुल्म–ज़बरदस्ती की गुन्जाइश पैदा हो सकती है तो ख़ुद बनी अब्बास में एक घर के अन्दर दो भाई अगर एक दूसरे के आमने–सामने हों तो क्यों न एक दूसरे के ख़िलाफ जंगी कारवाईयाँ करने पर तैयार नज़र आये। और क्यों न इन ताक़तों में आपस में झगड़ा हो जबकि उनमें से कोई उस हमदर्दी और मेहरबानी और ख़ुदा की मख़लूक़ की भलाई करने वाला भी नहीं है, जिसे बनी फातिमा अपने सामने रखकर अपनी वाक़ई हुक़ूक़ से आँख चुरा लिया करते थे। इसी का नतीजा था कि इधर हारून रशीद की आँख बन्द हो गई और उधर भाईयों में आपसी जंग के शोले भड़क उठे। आख़िर चार साल की बराबर कशमकश और लम्बी जंग के बाद मामून को कामियाबी हुई और उसका भाई अमीन मुहर्रम 198 हि0 में तलवार के घाट उतार दिया गया और मामून के ख़िलाफ तमाम बनी अब्बास के हुदूद व सलतनत पर क़ायम हो गई।

वली अह्दी

अमीन के क़त्ल होने के बाद सलतनत तो मामून के पाएनाम हो गई। मगर यह पहले कहा जा चुका था अमीन ननिहाल की तरफ से अरबी नस्ल से था और मामून अजमी नस्ल से। अमीन के क़त्ल होने से इराक़ की अरब क़ौम और अरकाने सलतनत के दिल मामून की तरफ से साफ नहीं हो सकते थे। बल्कि एक ग़म व ग़ुस्से की कैफियत महसूस करते थे। दूसरी तरफ ख़ुद बनी अब्बास में से एक बड़ी जमाअत जो अमीन की तरफदार थी उससे भी मामून को हर वक़्त ख़तरा लगा हुआ था औलादे फातिमा में से बहुत से लोग जो कभी–कभी बनी अब्बास के मुक़ाबले में खड़े होते रहे थे वह चाहे क़त्ल कर दिये गये हों या देश से निकाल दिये गये हों या क़ैद रखे गये हों। उनके भी साथ एक जमाअत थी जो अगर हुकूमत का कुछ बिगाड़ न भी सकती तब भी दिल ही दिल में हुकूमत बनी अब्बास से अलग ज़रूर थी।

ईरान में अबुमुस्लिम ख़ुरासानी ने बनी उमैय्या के ख़िलाफ जो हंगामा पैदा किया था वह उन ज़ुल्मों ही को याद दिलाकर जो बनी उमैय्या के हाथों हज़रत इमाम हुसैन अ॰ और दूसरे बनी फातिमा के साथ हुए थे इससे ईरान में इस ख़ानदान के साथ हमदर्दी का पैदा होना फितरी

था। दरमियान में बनी अब्बास ने इससे ग़लत फायदा उठाया। मगर इतनी मुद्दत में कुछ न कुछ तो ईरानियों की आँखें भी खुली ही होंगी कि हम से कहा गया था और इक़तेदार किन लोगों ने हासिल कर लिया। मुमकिन है कि ईरानी क़ौम के इन ख़यालात का चर्चा मामून के कानों तक भी पहुँचा हो। अब जिस वक़्त कि अमीन के क़त्ल के बाद वह अरब क़ौम पर और बनी अब्बास के ख़ानदान पर भरोसा नहीं कर सकता था और उसे हर वक़्त इस हल्क़े से बग़ावत का अन्देशा था। तो उसे सियासी मसलेहत इसी में मालूम हुई कि अरब के ख़िलाफ अजम और बनी अब्बास के ख़िलाफ बनी फातिमा को अपना बनाया जाए और चूँकि तरीक़े में सच्चाई नहीं समझी जा सकती और वह तबियतों पर असर नहीं डाल सकता अगर से साफ हो जाए कि वह सियासी मसलहतों की बिना पर है। इसलिए ज़रूरत हुई कि मामून मज़हबी हैसियत से अपनी शीईयत और विलाए अहलेबैत अ॰ के चर्चे अवाम के हल्क़ों में फैलाए और यह दिखलाए कि वह इन्तिहाई नेक नियती से अब ''हक़ बिहक़ दार रसीद'' की कहावत को सच्चा बनाना चाहता है।

इस सिलसिले में जैसा कि जनाब शैख़ सदूक़ आलल्लाह मक़ामहू ने तहरीर फ़रमाया है उसने अपनी नज़र की हिकायत की भी तशहीर की कि जब अमीन का और मेरा मुक़ाबला था और बहुत नाज़ुक हालत थी और ठीक उसी वक़्त मेरे ख़िलाफ सीस्तान और किरमान में भी बग़ावत हो गई थी और ख़ुरासान में भी बेचैनी फैली हुई थी और मेरी माली हालत भी ख़राब थी और फौज की तरफ से भी इत्मिनान न था तो इस सख़्त और दुश्वार माहौल में मैंने ख़ुदा से दरख़्वास्त की और मन्नत मानी कि अगर यह सब झगड़े ख़त्म हो जाएं और मैं ख़िलाफत तक पहुँचूँ तो इसको इसके असली हक़दार यानी औलादे फातिमा में जो इसका अहल है उस तक पहुँचा दूँगा। इसी नज़र के बाद से मेरे सब काम बनने लगे और आख़िर तमाम दुश्मनों पर मुझे फतह हासिल हुई।

यक़ीनन यह वाक़ेआ मामून की तरफ से इसलिए बयान किया गया कि इसका तर्ज़े अमल दिल और नियत की सच्चाई वाला समझा जाए। यूँ तो अहलेबैत के जो खुले हुए सख़्त से सख़्त दुश्मन थे। वह भी उनकी हक़ीक़त और फ़ज़ीलत से वाक़िफ थे ही और उनकी अज़मत को जानते थे मगर शीईयत के माने सिर्फ यह जानना तो नहीं हैं। बल्कि मुहब्बत रखना और इताअत करना हैं और मामून की तर्ज़े अमल से यह ज़ाहिर है कि वह इस शीईयत और अहलेबैत की मुहब्बत का ढिन्ढोरा पीटने के बाद भी इमाम की इताअत नहीं करता था बल्कि इमाम को अपनी मर्ज़ी के मुताबिक़ चलाने की कोशिश थी। वली अहद बनने के बारे में आपके इख़्तियारात को बिलकुल ख़त्म कर दिया गया और आपको मजबूर बना दिया गया था इससे ज़ाहिर है कि यह वली अहदी का दिया जाना भी एक हुकूमती सख़्ती थी जो उस वक़्त शीईयत के भेस में इमाम के साथ की जा रही थी।

इमाम अलैहिस्सलाम का इस वलीअह्दी को क़बूल कर लेना, बिलकुल ऐसा ही था जैसा हारून के हुक्म से इमाम मूसा काज़िम अ॰ का जेल ख़ाने चले जाना। इसीलिए जब इमाम रिज़ा मदीना मुनव्वरा से ख़ुरासान की तरफ रवाना हो रहे थे तो आपके रंज व सदमे और इज़्तेराब की काई हद न थी। रौज़–ए–रसूल स॰ से रुख़सत के वक़्त आपका वही आलम था जो हज़रत इमाम हुसैन का मदीने से रवानगी के मौक़े पर था।

देखने वालों ने देखा कि आप बेताब होकर रौज़े के अन्दर जाते और आह व ज़ारी के साथ उम्मत की शिकायत करते हैं फिर बाहर निकल कर घर जाने का इरादा करते हैं और फिर दिल नहीं मानता फिर रौज़े से जाकर लिपट जाते हैं यही सूरत कई बार हुई। रावी का बयान है कि मैं हज़रत के क़रीब गया तो फ़रमाया ऐ महूल (हालात को बदल देने वाले) मैं अपने दादा के रौज़े से ज़बरदस्ती जुदा किया जा रहा हूँ अब मुझको यहाँ वापस आना नसीब न होगा।

200 हि0 में हज़रत मदीना मुनव्वरा से ख़ुरासान की जानिब रवाना हुए घर वालों और मुताल्लिक़ीन सबको मदीने में ही छोड़ गए उस वक़्त इमाम मुहम्मद तक़ी अ॰ की उम्र पाँच साल की थी आप भी मदीने ही में रहे जब हज़रत मर्व पहुँचे जो उस वक़्त राजधानी था तो मामून ने कुछ रोज़ की मेहमान नवाज़ी और इज़्ज़त की रसमें अदा करने के बाद ख़िलाफत के क़बूल करने का सवाल पेश किया, हज़रत ने इस से उसी तरह इन्कार किया जिस तरह अमीरुलमोमिनीन अ॰ चौथे मौक़े पर ख़िलाफत पेश किये जाने के वक़्त इन्कार फरमा रहे थे मामून को ख़िलाफत से अलग होना हक़ीक़त में मन्ज़ूर न था वरना वह इमाम को इसी पर मजबूर करता चुनानचे जब हज़रत ने ख़िलाफत क़बूल करने से इन्कार फरमाया तो उसने वली अह्दी का सवाल पेश किया। हज़रत अ॰ इसके भी अन्जाम से वाक़िफ़ थे। और ख़ुशी के साथ जाबिर हुकूमत की तरफ से कोई मन्सब क़बूल करना आपके मज़हबी उसूल के ख़िलाफ था। हज़रत ने इससे भी इन्कार फरमाया। मगर उस मामून की ज़िद ज़बरदस्ती की हद तक पहुँच गई और उसने साफ कह दिया कि अगर आप इसको मन्ज़ूर नहीं कर सकते तो आपको अपनी जान से हाथ धोना पड़ेगा।

जान का ख़तरा क़बूल किया जा सकता है जब मज़हबी मफाद का क़याम जान देने पर मौक़ूफ हो वरना हिफाज़ते जान शरीअते इस्लाम का बुनियादी हुक्म है। इमाम ने फरमायाः यह है तो मैं मजबूरन क़बूल करता हूँ, मगर कारोबार सलतनत में बिलकुल दख़ल न दूँगा। हाँ अगर किसी बात में मुझ से मश्वरा लिया जाएगा तो नेक मश्वरा ज़रूर दूँगा, इसके बाद यह वली अह्दी सिर्फ बराए नाम सलतनते वक़्त के एक ढकोसले से ज़्यादा कोई क़ीमत नहीं रखती थी। जिससे मुमकिन है कुछ वक़्त तक किसी सियासी मक़सद में कामियाबी हासिल कर ली गई हो। मगर इमाम की हैसियत से अपने फराएज़ अन्जाम देने में बिलकुल वह थी जो उनके पहले हज़रत अली मुर्तज़ा अ॰ अपने ज़माने की हुकूमती ताक़तों के साथ इख़्तियार कर चुके थे जिस तरह उनका कभी कभी मश्वरा दे देना उन हुकूमतों को सही व जायज़ नहीं बना सकता था वैसे ही इमाम रिज़ा का इस तरह से वली अह्दी का क़बूल फरमाना इस हुकूमत के जायज़ होने की वजह नहीं हो सकता था। सिर्फ मामून की एक राजहट थी जो इस तरह पूरी हो गई। मगर इमाम ने अपने दामन को सलतनते ज़ुल्म के इक़दामात और नज़्म व नस्क़ से बिलकुल अलग रखा।

बनी अब्बास मामून के इस फैसले से बिलकुल इत्तेफाक़ न रखते थे। उन्होंने बहुत कुछ अड़चनें पैदा कीं मगर मामून ने साफ कह दिया कि अली रिज़ा से बेहतर कोई दूसरा शख़्स तुम बता दो। इसका कोई जवाब न था। इस सिलसिले में बड़े–बड़े मुनाज़रे भी हुए। मगर ज़ाहिर है कि इमाम के मुक़ाबले में किसी की इल्मी फौक़ियत

साबित हो सकती थी। मामून का फैसला अटल था और वह इस से हटने को तैयार न था। न कोई दूसरी दलीलों से उसे क़ायल कर सकता था कि वह अपने फैसले को बदल देता।

रमज़ान 201 हि0 की पहली तारीख़ जुमेरात के दिन वली अह्दी का जलसा हुआ। बड़ी शान व शौकत के साथ यह तक़रीब की गई। सबसे पहले मामून ने अपने बेटे अब्बास को इशारा किया और उसने बैअत की फिर और लोग बैअत से शर्फयाब हुए। सोने और चाँदी के सिक्के सरे मुबारक पर निसार किये गये और तमाम अरकाने सलतनत व मुलाज़मीन को इनामात तक़सीम हुए। मामून ने हुक्म दिया कि हज़रत के नाम का सिक्का तैयार किया जाए। चुनानचे दिरहम व दीनार पर हज़रत के नाम का नक़्श हुआ और तमाम हुकूमत में वह सिक्का चलाया गया जुमे के खुत्बे में हज़रत का नाम दाख़िल किया गया।

अख़्लाक़ व औसाफ़

मजबूरी और बेबसी का नाम क़नाअत या दुरवेशी ''इस्मत बीबी अज़ बे चादरी'' की कहावत के हिसाब से दुनिया के लोगों का तरीक़ा रहताहै मगर हुकूमत व दौलत के साथ फक़ीराना ज़िन्दगी इख़्तियार करना बुलन्द मर्तबा मर्दाने ख़ुदा का हिस्सा है। अहलेबैत मासूमीन अ॰ में से जो बुज़ुर्गवार ज़ाहिरी हैसियत से हुकूमत के दर्जे पर न थे और अकसर यह हज़रात ऐसे ही थे वह आम तौर से अच्छे लिबास और शान के साथ रहते थे। क्योंकि उनकी फक़ीरी को दुश्मन बेबसी पर महमूल करके तान व तश्नीअ् पर आमादा होते और हक़्क़ानियत के वक़ार को ठेस लगती मगर जो बुज़ुर्ग इत्तेफाक़ाते रोज़गार से ज़ाहिरी इक़तेदार के दर्जे पर पहुँच गये। उन्होंने इतना ही फक़ीरी और सादगी के मुज़ाहरे में इज़ाफा कर दिया ताकि उनकी ज़िन्दगी ग़रीब मुसलमानों की तसल्ली का ज़रिया बने और उनके लिए नमून–ए–अमल हो। जैसे अमीरुलमोमिनीन हज़रत अली मुर्तज़ा अ॰, चूँकि शहंशाहे इस्लाम माने जा रहे थे इसलिए आपका लिबास और खाना वैसा ज़ाहिदाना था जिसकी मिसाल दूसरे मासूमीन अ॰ के यहाँ नहीं मिलती। यही सूरत हज़रत अली रिज़ा अ॰ की थी। आप मुसलमानों के इस अज़ीमुश्शान सलतनत के वली अहद बनाए गए थे जिसकी बड़ी हुकूमत के सामने रोम व फारस का ज़िक्र भी ताक़े निस्याँ की नज़र हो गया था। जहाँ अगर बादल सामने से गुज़रता तो ख़लीफा की ज़बान से आवाज़ बुलन्द होती थी कि ''हा जहाँ तुझे बरसना हो बरस, बहरहाल तेरे पैदावार का ख़िराज मेरे ही पास आयेगा।''

हज़रत इमाम रिज़ा अ॰ का इस सलतनत वली अहदी पर फायज़ होना दुनिया के सामने एक नमूना था कि दीन वाले अगर दुनिया को पा जाएँ तो उनका रवैय्या क्या होगा। यहाँ इमाम रिज़ा अ॰ को अपनी ज़िम्मेदारी को महसूस करते हुए ज़रूरत थी कि तक़वा और दुनिया को छोड़ने के मुज़ाहरे इतने ही नुमाया बना दें जितने शान व शौकत के दुनियावी तक़ाज़े ज़्यादा हैं। चुनानचे तारीख़ ने अपने को दुहरा दिया और अली रिज़ा अ॰ के लिबास में अली मुर्तज़ा अ॰ की सीरत दुनिया की निगाहों के सामने आ गई। आपने अपनी दौलत सरा में क़ीमती क़ालीन बिछवाना पसन्द नहीं किये बल्कि जाड़े में बालों का कम्बल और गर्मी में चटाई का फर्श हुआ करता था। खाना सामने लाया जाता तो दरबान, साइस और तमाम गुलामों को बुलाकर अपने साथ खाने में शरीक फरमाते थे। दाव व आदाब शाही के ख़ूगर एक बलख़ी शख़्स ने एक दिन कह दिया कि

हुज़ूर अगर इन लोगों के खाने का इन्तिज़ाम अलग हो जाया करे तो क्या हरज है। हज़रत ने फरमायाः ''ख़ालिक़ सबका अल्लाह है। माँ सबकी हौव्वा और बाप सबके आदम अ॰ हैं। जज़ा व सज़ा हर एक की उसके अमल के मुताबिक़ होगी। फिर दुनिया में तफरक़ा किस लिए हो।''

इसी अब्बासी सलतनत के माहौल का एक जुज़ बनकर जहाँ सिर्फ पैगम्बर की तरफएक क़राबतदारी की निस्बत के सबब अपने को ख़ल्क़े ख़ुदा पर हुकमरानी का हक़दार बताया जाता था और इसके साथ कभी अपने अमाल व अफआलपर नज़र न की जाती थी कि हम कैसे हैं और हमको क्या करना चाहिए। यहाँ तक कि यह कहा जाने लगा कि बनी अब्बास ज़ुल्म व सितम और फिस्क़ व फुजूर में बनी उमैय्या से कम न रहे बल्कि बाज़ बातों में उनसे आगे बढ़ गये और इसके साथ फिर भी क़राबते रसूल पर फख़्र था। इस माहौल के अन्दर दाख़िल होकर इमाम रिज़ा अ॰ का इस बात पर बड़ा ज़ोर देना कि क़राबत कोई चीज़ नहीं अस्ल इन्सान का अमल है। देखने में सिर्फ एक शख़्स का इज़्हारे फरोतनी और इन्केसारे नफ़्स था जो बहरहाल एक अच्छी सिफ़त है लेकिन हक़ीक़त में वह इससे बढ़कर तक़रीबन एक सदी की अब्बासी हुकूमत की पैदा की हुई ज़हनियत के ख़िलाफ इस्लामी ख़याल का एलान था और इस हैसियत से बड़ा अहम हो गया था कि वह अब इसी सलतनत के एक रुकन की तरफ से हो रहा था। चुनानचे इमाम रिज़ा अ॰ की सीरत में इसके मुख़तलिफ शवाहिद हैं। एक शख़्स ने हज़रत की ख़िदमत में अर्ज़ की कि ''ख़ुदा की क़सम बाप दादा के एतेबार से कोई शख़्स आपसे अफज़ल नहीं।'' हज़रत ने फरमाया ''मेरे बाप दादा को जो शर्फ हासिल हुआ था वह भी सिर्फ तक़वा, परहेज़गारी और इताअते ख़ुदा से।'' एक शख़्स ने किसी दिन कहा कि ''ख़ुदा की क़सम आप बेहतरीन ख़ल्क़ हैं'' हज़रत ने फरमाया ''ऐ शख़्स हलफ न उठा जिसका तक़वा व परहेज़गारी मुझसे ज़्यादा हो वह मुझ से अफज़ल है।''

इब्राहीम बिन अब्बास का बयान है कि हज़रत फरमाते थे ''मेरे तमाम लौंडी गुलाम आज़ाद हो जाएँ अगर इसके सिवा कुछ और हो कि मैं अपने को महज़ रसूलुल्लाह स॰ की क़राबत की वजह से इस सियाह रंग गुलाम से भी अफज़ल नहीं जानता (हज़रत ने इशारा किया अपने एक गुलाम की तरफ) हाँ जब अमले ख़ैर बजा लाऊँगा तो अल्लाह के नज़दीक इससे अफज़ल हूँगा।''

यह बातें कोताह नज़र लोग सिर्फ ज़ाती इन्केसार पर महमूल कर लेते हों। मगर ख़ुद हुकूमते अब्बासिया का फरमाँरवा यक़ीनन इतना कमज़ोर ज़हन का न होगा कि वह इन ताज़ियानों को महसूस न करे जो इमाम रिज़ा अ॰ के ख़ामोश कामों और इस तरह की बातों से उसके ख़ानदानी निज़ामे सलतनत पर बराबर लग रहे थे। इसने तो ख़ुद के ख़याल से एक वक़्ती और सियासी मसलेहत से अपनी सलतनत को मज़बूत बनाने के लिए हज़रत को वली अहद बनाया था मगर बहुत जल्द उसे महसूस हुआ कि अगर इनकी ज़िन्दगी ज़्यादा दिनों क़ायम रही तो अवाम की सोच में बिलकुल इन्क़ेलाब हो जाएगा और अब्बासी सलतनत का तख़्ता हमेशा के लिए उलट जायेगा।

अज़ाए हुसैन अ॰ का फैलाना

अब इमाम रिज़ा अ॰ को हक़ की तबलीग़ के लिए हुसैन अ॰ के नाम को फैलाने के काम को तरक़्क़ी देने का भी पूरा मौक़ा मिल गया था,

जिसकी बुनियाद इससे पहले हज़रत इमाम मुहम्मद बाक़िर अ॰ और इमाम जाफर सादिक़ अ॰ क़ायम कर चुके थे। मगर वह ज़माना ऐसा था कि इमाम की ख़िदमत में वही लोग हाज़िर होते थे जो बहैसियत इमाम या बहैसियत आलिमे दीन आपके साथ अक़ीदत रखते थे और अब इमाम रिज़ा अ॰ तो इमाम रूहानी भी हैं और वली अहदे सलतनत भी। इसलिए आपके दरबार में हाज़िर होने वालों का दायरा बड़ा है, मर्व का मक़ाम है जो ईरान के तक़रीबन बीच में है। हर तरफ के लोग यहाँ आते थे और यहाँ यह हाल के इधर मुहर्रम का चाँद निकला और आँखों से आँसू जारी हो गये। दूसरों को भी तरग़ीब व तहरीस की जाने लगी कि आले मुहम्मद स॰ की मुसीबतों को याद करो और ग़मों के असरात को ज़ाहिर करो।

यह भी इरशाद होने लगा कि ''जो उस मज्लिस में बैठे जहाँ हमारी बातें ज़िन्दा की जाती हैं। उसका दिल मुर्दा न होगा उस दिन कि जब सबके दिल मुर्दा होंगे।''

इमाम हुसैन का तज़किरा इमाम हुसैन के लिए जो भीड़ हो उसका नाम इस्तेलाही तौर पर ''मज्लिस'' इसी इमाम रिज़ा (अ॰) की हदीस से ही लिया गया है। आपने अमली तौर पर भी ख़ुद मज्लिसें करना शुरु कर दीं। जिनमें कभी ख़ुद ज़ाकिर हुए और दूसरे सुनने वाले जैसे रैय्यान बिन शैब की हाज़री के मौक़े पर जो आपने इमाम हुसैन अ॰ के मसाएब बयान फरमाए और कभी अब्दुल्लाह बिन साबित या देबले ख़ज़ाई ऐसे किसी शायर की हाज़िरी के मौक़े पर उस शायर को हुक्म हुआ कि तुम इमाम हुसैन अ॰ के ज़िक्र में अशआर पढ़ो वह ज़ाकिर हुआ और हज़रत सुनने वालों में दाख़िल हुए।

देबल को हज़रत ने मज्लिस के बाद एक क़ीमती हुल्ला भी अता किया जिसके लेने में देबल ने यह कहकर बहाना किया कि मुझे क़ीमती हुल्ले की ज़रूरत नहीं। अपने जिस्म का उतरा हुआ लिबास अता फरमाइये तो हज़रत ने उनकी ख़ुशी पूरी की। वह हुल्ला उन्हें दिया ही इसके अलावा एक जुब्बा अपने पहन्ने का भी अता किया।

इससे ज़ाकिर का बुलन्द तरीक़–ए–कार कि इसे किसी दुनियावी इनाम की ख़ातिर या अल्लाह की पनाह उजरत तै करके ज़ाकिरी नहीं करना चाहिए और बानी मज्लिस का तरीक़ा कि वह बिना कुछ तैय किये हुए कुछ बतौर पेशकश ज़ाकिर की ख़िदमत में पेश करे। दोनों बातें साबित हैं मगर इन मज्लिसों में सुनने वालों के अन्दर किसी हिस्से की तक़सीम हरगिज़ किसी सही किताब से साबित नहीं होती।

वफ़ात

मामून की उम्मीदें ग़लत साबित होने ही का नतीजा था कि वह आख़िर इमाम की जान लेने पर तुल गया और वही ख़ामोश चाल जो उन मासूमों के साथ इसके पहले बहुत बार चली जा चुकी थीं काम में लाया। अंगूर में जो बतौर तोहफे के इमाम के सामने पेश किये गये थे, ज़हर दिया गया और उसके असर से 17 सफर 203 हि0 में हज़रत ने शहादत पाई। मामून ने देखने में बहुत रंज व मातम का इज़हार किया और बड़ी शान व शौकत के साथ अपने बाप हारून रशीद के क़रीब दफ़्न किया।

जहाँ मशहदे मुक़द्दस में हज़रत का रौज़ा आज ताजदाराने आलम की जबीं साई का मरकज़ बना हुआ है वही अपने वक़्त का बुज़ुर्ग तरीन दुनियावी शहंशाह हारून रशीद भी दफ़्न है। जिसका नाम व निशान तक वहाँ जाने वालों को मालूम नहीं होता। □□□